30-05-71 ओम शान्ति अव्यक्त बापदादा मधुबन

बाप की आज्ञा और प्रतिज्ञा

बापदादा आज्ञा भी करते हैं और प्रतिज्ञा भी करते हैं। ऐसे कौनसे महावाक्य हैं जिसमें आज्ञा भी आ जाए और प्रतिज्ञा भी आ जाए? ऐसे महावाक्य याद आते हैं जिनमें आज्ञा और प्रतिज्ञा - दोनों आ जाएं? ऐसे बहुत महावाक्य हैं। लम्बी लिस्ट है इनकी। लेकिन टैम्पटेशन के महावाक्य हैं कि 'एक कदम आप उठाओ तो हजार कदम बापदादा आगे आयेंगे', न कि 10 कदम। इन महावाक्यों में आज्ञा भी है कि एक कदम आगे बढ़ाओ और फिर प्रतिज्ञा भी है कि हजार कदम बापदादा भी आगे बढ़ेंगे। ऐसे उमंग- उत्साह दिलाने वाले महावाक्य सदैव स्मृति में रहने चाहिए। आज्ञा को पालन करने से बाप की जो प्रतिज्ञा है उससे सहज रीति अपने को आगे बढ़ा सकेंगे। क्योंकि फिर प्रतिज्ञा मदद का रूप बन जाती है। एक अपनी हिम्मत, दूसरी मदद - जब दोनों मिल जाते हैं तो सहज हो जाता है। इसलिए ऐसे-ऐसे महावाक्य सदैव स्मृति में रहने चाहिए। स्मृति ही समर्थी लाती है। जैसे राजपूत होते हैं, वह जब युद्ध के मैदान में जाते हैं तो भले कैसा भी कमज़ोर हो उनको अपने कुल की स्मृति दिलाते हैं। राजपूत ऐसे-ऐसे होते हैं, ऐसे होकर गये हैं, ऐसे ऐसे करके गये हैं, ऐसे कुल के तुम हो - यह स्मृति दिलाने से उन्हों में समर्थी आती है। सिर्फ कुल की महिमा सुनते-सुनते स्वयं भी ऐसे महान् बन जाते हैं। इस रीति आप सूर्यवंशी हो, वो सूर्यवंशी राज्य करने वाले क्या थे? कैसे राज्य किया और किस शक्ति के आधार पर से ऐसा राज्य किया? वह स्मृति और साथ-साथ अब संगमयुग के ईश्वरीय कुल की स्मृति। अगर यह दोनों ही स्मृति बुद्धि में आ जाती हैं तो फिर समर्थी आ जाती है। जिस समर्थी से फिर माया का सामना करना सरल हो जाता है। सिर्फ स्मृति के आधार से। तो हर कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए क्या साधन हुआ? स्मृति से अपने में पहले समर्थी को लाओ। फिर कार्य करो। तो भले कैसा भी कमज़ोर होगा लेकिन स्मृति के आधार से उस समय के लिए समर्थी आ जायेगी। भले पहले वह अपने को उस कार्य के योग्य न समझते होंगे लेकिन स्मृति से वह अपने को योग्य देखकर आगे के लिए उमंग-उत्साह में आयेंगे। तो सर्व कार्य करने के पहले यह स्मृति रखो। ईश्वरीय कुल और भविष्य की, दोनों ही स्मृति आने से कभी भी निर्बलता नहीं आ सकेगी। निर्बलता नहीं तो असफलता भी नहीं। असफलता का कारण ही है निर्बलता। जब स्मृति से समर्थी को लायेंगे तो निर्बलता अर्थात् कमज़ोरी समाप्त। असफलता हो नहीं सकती। तो सदा सफलतामूर्त बनने के लिए अपनी स्मृति को शक्तिशाली बनाओ, फिर स्वयं ही वह स्वरूप बन जायेंगे। जैसी-जैसी स्मृति रहेगी वैसा स्वरूप अपने को महसूस करेंगे। स्मृति होगी कि मैं शक्ति हूँ तो शक्तिस्वरूप बनकर के सामना कर सकेंगे। अगर स्मृति में ही यह रखते हो - मैं तो पुरुषार्थी हूँ, कोशिश कर देखती हूँ, तो स्वरूप भी कमज़ोर बन जाता है। तो स्मृति को शक्तिशाली बनाने से स्वरूप भी शक्ति का बन जायेगा। तो यह सफलता का तरीका है। फिर यह बोल नहीं सकेंगे कि चाहते हुए भी क्यों नहीं होता।

चाहना के साथ समर्थी भी चाहिए और समर्थी आयेगी स्मृति से। अगर स्मृति कमजोर है तो फिर जो संकल्प करते हो वह सिद्ध नहीं हो पाता है। जो कर्म करते हो वह भी सफल नहीं हो पाते हैं। तो स्मृति रखना मुश्किल है वा सहज है? जो सहज बात होती है वह निरन्तर भी रह सकती है। स्मृति भले निरन्तर रहती भी है लेकिन एक होती है साधारण स्मृति, दूसरी होती है पावरफुल स्मृति। साधारण रूप में तो स्मृति रहती है लेकिन पावरफुल स्मृति रहनी चाहिए। जैसे कोई जज होता है तो उनको सारा दिन अपने जजपने की स्मृति तो रहती है लेकिन जिस समय खास कुर्सा पर बैठता है तो उस समय वह सारे दिन की स्मृति से पावरफुल स्मृति होती है। तो ड्यूटी अर्थात् कर्त्तव्य पर रहने से पावरफुल स्मृति रहती है। और वैसे साधारण स्मृति रहती है। तो आप भी साधारण स्मृति में तो रहते हो लेकिन पावरफुल स्मृति, जिससे बिल्कुल वह स्वरूप बन जाए और स्वरूप की सिद्धि 'सफलता' मिले, वह कितना समय रहती है। इसकी प्रैक्टिस कर रहे हो ना? निरन्तर समझो कि हम ईश्वरीय सर्विस पर हैं। भले कर्मणा सर्विस भी कर रहे हो, फिर भी समझो- मैं ईश्वरीय सर्विस पर हूँ। भले भोजन बनाते हो, वह है तो स्थूल कार्य लेकिन भोजन में ईश्वरीय संस्कार भरना, भोजन को पावरफुल बनाना, वह तो ईश्वरीय सर्विस हुई ना। 'जैसा अन्न वैसा' मन कहा जाता है। तो भोजन बनाते समय ईश्वरीय स्वरूप होगा तब उस अन्न का असर मन पर होगा। तो भोजन बनाने का स्थूल कार्य करते भी ईश्वरीय सर्विस पर हो ना! आप लिखते भी हो - आन गॉडली सर्विस ओनली। तो उसका भावार्थ क्या हुआ? हम ईश्वरीय सन्तान सिर्फ और सदैव इसी सर्विस के लिए ही हैं। भल उसका स्वरूप स्थूल सर्विस का है लेकिन उसमें भी सदैव ईश्वरीय सर्विस में हूँ। जब तक यह ईश्वरीय जन्म है तब तक हर सेकेण्ड, हर संकल्प, हर कार्य ईश्वरीय सर्विस है। वह लोग थोड़े टाइम के लिए कुर्सा पर बैठ अपनी सर्विस करते हैं, आप लोगों के लिए यह नहीं है। सदैव अपने सर्विस के स्थान पर कहाँ भी हो तो स्मृति वह रहनी चाहिए। फिर कमज़ोरी आ नहीं सकती। जब अपनी सर्विस की सीट को छोड़ देते हो तो सीट को छोड़ने से स्थिति भी सेट नहीं हो पाती। सीट नहीं छोड़नी चाहिए। कुर्सा पर बैठने से नशा होता है ना। अगर सदैव अपने मर्तबे की कुर्सा पर बैठो तो नशा नहीं रहेगा? कुर्सा वा मर्तबे को छोड़ते क्यों हो? थक जाते हो? जैसे आप लोगों ने राजा का चित्र दिखाया है - पहले दो ताज वाले थे, फिर रावण पीछे से उसका ताज उतार रहा है। ऐसे अब भी होता है क्या? माया पीछे से ही मर्तबे से उतार देती है क्या! अब तो माया विदाई लेने के लिए, सत्कार करने के लिए आयेगी। उस रूप से अभी नहीं आनी चाहिए। अब तो विदा लेगी। जैसे आप लोग ड्रामा दिखाते हो - कलियुग विदाई लेकर जा रहा है। तो वह प्रैक्टिकल में आप सभी के पास माया विदाई लेने आती, न कि वार करने के लिए। अभी माया के वार से तो सभी निकल चुके हैं ना। अगर अभी भी माया का वार होता रहेगा तो फिर अपना अतीन्द्रिय सुख का अनुभव कब करेंगे? वह तो अभी करना है ना। राज्य-भाग्य का तो भविष्य में अनुभव करेंगे, लेकिन अतीन्द्रिय सुख का अनुभव तो अभी करना है ना। माया के वार होने से यह अनुभव नहीं कर पाते। बाप के बच्चे बनकर वर्तमान अतीन्द्रिय सुख का पूरा अनुभव प्राप्त न किया तो क्या किया।

बच्चा अर्थात् वर्से का अधिकारी। तो सदैव यह सोचो कि संगमयुग का श्रेष्ठ वर्सा 'अतीन्द्रिय' सुख सदाकाल प्राप्त रहा? अगर अल्पकाल के लिए प्राप्त किया तो बाकी फर्क क्या रहा? सदाकाल की प्राप्ति के लिए ही तो बाप के बच्चे बने। फिर भी अल्पकाल का अनुभव क्यों? अटूट, अटल

अनुभव होना चाहिए। तब ही अटल, अखण्ड स्वराज्य प्राप्त करेंगे। तो अटूट रहता है वा बीच-बीच में टूटता है? टूटी हुई चीज फिर जुड़ी हुई हो और कोई बिल्कुल अटूट चीज़ है - तो दोनों से क्या अच्छा लगेगा? अटूट चीज अच्छी लगेगी ना। तो यह अतीन्द्रिय सुख भी अटूट होना चाहिए। तब समझो कि बाप के वर्से के अधिकारी बनेंगे। अगर अटूट, अटल नहीं तो क्या समझना चाहिए? वर्से के अधिकारी नहीं बने हैं लेकिन थोड़ा बहुत दान-पुण्य की रीति से प्राप्त कर लिया है, जो कभी-कभी प्राप्त हो जाता है। वर्सा सदैव अपनी प्राप्ति होती है। दान-पुण्य तो कभी-कभी की प्राप्ति होती है। वारिस हो तो वारिस की निशानी है - अतीन्द्रिय सुख के वर्से के अधिकारी। वारिस को बाप सभी-कुछ विल करता है। जो वारिस नहीं होंगे उनको थोड़ा-बहुत देकर खुश करेंगे। बाप तो पूरा विल कर रहे हैं। जिनका बाप के विल पर पूरा अधिकार होगा, उन्हों की निशानी क्या दिखाई देगी? वह विल-पावर वाले होंगे। उनका एक-एक संकल्प विल-पावर वाला होगा। अगर विल-पावर है तो असफलता कभी नहीं होगी। पूरे विल के अधिकारी नहीं बने हैं तब विल-पावर नहीं आती है। बाप की प्रॉपर्टी वा प्रास्पर्टा को अपनी प्रॉपर्टी बनाना - इसमें बहुत विशाल बुद्धि चाहिए। बाप की प्रॉपर्टी को अपनी प्रॉपर्टी कैसे बनायेंगे? जितना अपना बनाते जायेंगे उतना ही नशा और खुशी होगी। तो बाप की प्रॉपर्टी को अपनी प्रॉपर्टी बनाने का साधन कौनसा है? वा बाप की प्रॉपर्टी बाप की ही रहने दे? (कोई- कोई ने अपना विचार बताया) जिनकी दिल सच्ची थी उन पर साहेब राज़ी हुआ, तब तो प्रॉपर्टी दी। प्रॉपर्टी तो दे दी, अब उनको सिर्फ अपना बनाने की बात है। सर्विस वा दान भी तब कर सकेंगे जब प्रॉपर्टी को अपना बनाया होगा। जितना प्रॉपर्टी होगी उतना नशे से दान कर सकेंगे वा दूसरे की सर्विस कर सकेंगे। लेकिन बात है पहले अपना कैसे बनायें? अपना बन गया फिर दूसरे को देने से बढ़ता जाता है। यह हुई पीछे की बात। लेकिन पहले अपना कैसे बनायेंगे? जितना-जितना जो खज़ाना मिलता है उसके ऊपर मनन करने से अन्दर समाता है। जो मनन करने वाले होंगे उन्हों के बोलने में भी विल-पावर होगी। किसके बोलने में शक्ति का अनुभव होता है, क्यों? सुनते तो सभी इक्ट्ठे हैं। प्रॉपर्टी तो सभी को एक जैसी एक ही समय इकट्ठी मिलती है। जो मनन करके उस दी हुई प्रॉपर्टी को अपना बनाते हैं, उसको क्या होता है? कहावत है ना - 'अपनी घोट तो नशा चढ़े'। अभी सिर्फ रिपीट करने का अभ्यास है। मनन करने का अभ्यास कम है। जितना-जितना मनन करेंगे अर्थात् प्रॉपर्टी को अपना बनायेंगे तो नशा होगा। उस नशे से किसको भी सुनायेंगे, तो उनको भी नशा रहेगा। नहीं तो नशा नहीं चढ़ता है। सिर्फ भक्त बन महिमा कर लेते हैं, नशा नहीं चढ़ता है। तो मनन करने का अभ्यास अपने में डालते जाओ। फिर सदैव ऐसे नज़र आयेंगे जैसे अपनी मस्ती में मस्त रहने वाले हैं। फिर इस दुनिया की कोई भी चीज, उलझन आपको आकर्षण नहीं करेगी, क्योंकि आप अपने मनन की मस्ती में मस्त हो। जिस दिन मनन में मस्त होंगे उस दिन माया भी सामना नहीं करेगी, क्योंकि आप बिज़ी हो ना। अगर कोई बिज़ी होता है तो दूसरा अगर आयेगा भी तो लौट जायेगा। जैसे वह लोग अन्डरग्राउण्ड चले जाते हैं ना। आप भी मनन करने से अन्दर अर्थात् अन्डरग्राउण्ड चले जाते हो। अन्डरग्राउण्ड रहने से बाहर के बाम्बस् आदि का असर नहीं होता है। इसी रीति से मनन में रहने से, अन्तर्मुखी रहने से बाहरमुखता की बातें डिस्टर्ब नहीं करेगी। देह-अभिमान से गैर हाज़िर रहेंगे। जैसे कोई अपनी सीट से गैर हाज़िर होगा तो लोग लौट जायेंगे ना। आप भी मनन में अथवा अर्न्तमुखी रहने से देह-अभिमान की सीट को छोड़ देते हो, फिर माया लौट जायेगी, क्योंकि आप अर्न्तमुखी अर्थात् अन्डरग्राउण्ड हो। आजकल अन्डरग्राउण्ड बहुत बनाते जाते हैं - सेफ्टी के लिए। तो आपके लिए भी सेफ्टी का साधन यही अन्तर्मुखता है अर्थात् देह-अभिमान से अन्डरग्राउण्ड। अन्डरग्राउण्ड में रहना अच्छा लगता है! जिसका अभ्यास नहीं होता है वह थोड़ा टाइम रह फिर बाहरमुखता में आ जाते हैं, क्योंकि बहुत जन्मों के संस्कार बाहरमुखता के हैं। तो अन्तर्मुखता में कम रह पाते हैं। लेकिन रहना निरन्तर अन्तर्मुखी है। अच्छा।